साधुषु=साधुओं में; **अपि**=भी; **च**=तथा; **पापेषु**=पापात्माओं में; **समबुद्धिः**=समान-बुद्धिवाला; **विशिष्यते**=विशेष है।

अनुवाद

सुहृद्, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, ईर्ष्यालु, पुण्यात्मा और पापात्मा में भी जिसकी समबुद्धि हो उसे विशेष उत्तम जानना चाहिए।।९।।

30/5

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।।१०।।

योगी=योगी; **युञ्जीत**=कृष्णभावनामृत में एकाग्र रखे; **सततम्**=निरन्तर; **आत्मानम्**=अपने को (देह, चित्त और आत्मा से); **रहसि**=निर्जन स्थान में; **स्थितः**=रहे; **एकाकी**=अकेला; **यतचित्तात्मा**=सदा सचेत; **निराशीः**=किसी अन्य वस्तु की ओर आकृष्ट हुए बिना; **अपरिग्रहः**=संग्रह-भाव से मुक्त।

अनुवाद

योगी अपना चित्त परमात्मा विष्णु पर ही एकाग्र करने का निरन्तर प्रयत्न करे; उसे एकान्त में रहकर सावधानीपूर्वक मन को वश में करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार कामनाओं और संग्रह के भाव से मुक्त हो जाय।।१०।।

तात्पर्य

श्रीकृष्ण की अनुभूति ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्, इन तीन रूपों में उत्तरोत्तर अधिक होती है। कृष्णभावनामृत का सार निरन्तर भगवत्सेवा में संलग्न रहना है। निर्विशेष ब्रह्म और एकदेशीय परमात्मा में आसक्त साधक भी एक अंश में कृष्णभावनाभावित हैं, क्योंकि निर्विशेष ब्रह्म श्रीकृष्ण की चिन्मय अंग-कांति है और परमात्मा श्रीकृष्ण के ही सर्वव्यापक अंश हैं। अतएव निर्विशेषवादी और ध्यानयोगी भी अप्रत्यक्ष रूप में कृष्णभावनाभावित हैं। फिर भी, यह मानना होगा कि जो सीधे-सीधे कृष्णभावनाभावित हो गया है, वह भक्त ही परम योगी है, क्योंकि वही ब्रह्म और परमात्मा के तत्त्व को वास्तव में जानता है। भक्त को परतत्त्व का पूर्ण ज्ञान रहता है, जबकि निर्विशेषवादी अथवा ध्यानयोगी पूर्णरूप से कृष्णभावनाभावित नहीं होता।

उपरोक्त सभी प्रकार के साधकों को अपने-अपने कार्यकलापों में निरन्तर लगे रहने की अनुमति दी गई है, जिससे वे यथासमय परमसिद्धि-लाभ कर सकें। "योगी का प्रथम कर्तव्य चित्त को सदा श्रीकृष्ण में एकाग्र रखना है। श्रीकृष्ण का चिन्तन नित्य बना रहे, क्षणमात्र के लिए भी उनका विस्मरण कभी न हो। भगवान् श्रीकृष्ण में इस मनोयोग का नाम ही 'समाधि' है।" मनोयोग के लिए नित्य एकान्तसेवन करता हुआ बाह्य विषय रूपी उपद्रवों से दूर रहे। योगी को चाहिए कि वह यथाशक्ति पूर्ण प्रयास के साथ अपने साध्य-साधन के लिए अनुकूल परिस्थितियों को ग्रहण करे और प्रतिकूलताओं को त्याग दे। उसे पूर्ण निश्चयपूर्वक चित्त को अनावश्यक भोगों के लिए लालायित नहीं होने देना चाहिए, क्योंकि ये परिग्रहभाव के रूप में बन्धनकारी सिद्ध होते हैं।